Introduction

भूमिका

साहित्य मानव-समाज की सांस्कृतिक धरोहर है । साहित्य के अभाव में कोई भी प्रदेश या भू-भाग विशेष राष्ट्र की संज्ञा को प्राप्त नहीं होता । यही तक कि आदिम से आदिम जातियों का भी अपना साहित्य होता है । उनकी सभ्यता और संस्कृति लोक-साहित्य के भावोच्छवासों से तरंगायित होती है । विश्व के समृद्ध देशों में भी भारत के लिए एक विशिष्ट आकर्षण व संमोहन पाया जाता है, क्योंकि भारतीय सभ्यता और संस्कृति के उद्घोषक ऐसे वेद, उपनिषद, पुराण, रामायण, महाभारत, अभिज्ञान शाकुंतलम्, मेघदूत, रघुवंश, कुमार संभव प्रभृति ग्रंथो की विरासत हमें प्राप्त है । इस प्रकार साहित्य देश के इतिहास और संस्कृति का निर्माण करता है । प्रत्येक युग में युगीन आवश्यकताओं के अनुसार साहित्य के नये नये रूप आकार लेते हैं । पुनरूत्थानोत्तर औद्योगिक क्रांति से विकसित पूंजीवादी व्यवस्था ने जीवन की जटिलताको अनेकगुना बढ़ा दिया, तब मानव-जीवन एवं समाज-जीवन की जटिलता को उसके यथार्थ एवं समग्र रूप में सम्प्रेषित करने के लिए उपन्यास एक समुचित संवाहक एवं लोकप्रिय विधा के रूप में प्रतिष्ठित हुआ ।

उपन्यास एक ऐसी विद्या है, जो मानव को उसकी सम्पूर्णता के साथ ग्रहण करते हुए उसकी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने की संनिष्ठ चेष्टा करती है । कदाचित इसीलिए राल्फ फाक्स ने उपन्यास को आधुनिक युग का महाकाव्य कहा है । वास्तव में उसका काम इस नये युग के नये मानव की वास्तविकताओं और समस्याओं को प्रस्तुत करना है, जा आधुनिक

सभ्यता के साथ उत्पन्न हुई हैं । यही कारण है कि इस विधा को हम आज अपने जीवन के अधिक सन्निकट एवं संवेद्य रूप में पाते हैं और ठीक यहीं पर वह अपने उपन्यास नाम को भी सार्थक करती है ।

उपन्यास की अनेक परिभाषाओं में एक प्रो॰ हरबर्ट जे॰ मूलर की यह परिभाषा है -- "The novel is typically a reprsentation of human experience whether liberal or ideal and therefore a comment upon life." अर्थात् उपन्यास में मानव-अनुभवों का चित्रण एक विशिष्टता के साथ स्वतंत्र अथवा आदर्शात्मक दृष्टिकोण से किया जाता है । अत: अनिवार्यत: वह जीवन पर की गई टिपपणी है । उपन्यास की इस विशेषता के कारण प्रारंभ से ही उसका सम्बन्ध व्यंग्य से रहा है । सृष्टि के आरंभ से ही इन दो स्थितियों पर विवाद चल रहा है कि "क्या होना चाहिए था" और "क्या हो रहा है" । सामान्य व्यक्ति "जो हो रहा है" उसे सहज रूप से स्वीकार कर लेता है । कहा गया है : "सब से भले विमूढ जिन्हें न ब्यापे जगत गति ।" किन्तु साहित्यकार तो समाज का सजग प्रहरी है, अत: वह "जो होना चाहिए" की ओर अग्रसर होता है । ठीक इसी बिन्दु पर उसका सामना समाज की विसंगतियों, विषमताओं और विद्रूपताओं से होता है जो उसे व्यंग्य-सृष्टि के लिए निरंतर प्रेरित करती है ।

उपन्यास प्रारंभ से ही मेरे अध्ययन और रूचि का विषय रहा । अत: एम॰ए॰ के वैकल्पिक प्रश्नपत्र - साहित्य-रूप में, मैंने उपन्यास का ही चयन किया था । उपन्यास का सैद्धान्तिक पक्ष और उजागर होता गया और उसके अध्ययन-अनुशीलन में मेरी रूचि बढ़ती गई । इन्हीं दिनों मैंने हिन्दी-गुजराती के कतिपय व्यंग्यकार जैसे, सर्वश्री हरिशंकर परसाई,

शरद जोशी, डॉ॰ नरेन्द्र कोहली, श्रीलाल शुक्ल, बकुल त्रिपाठी, विनोद भट्ट प्रभृति की कुछ व्यंग्य रचनाएँ पढ़ी और आगे के अध्ययन के लिए मेरा रास्ता तय हो गया। सन् 1960 के बाद का समय राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक दृष्टि से मोहभंग का रहा है, अत: इधर के उपन्यासों में व्यंग्योन्मुखता कुछ बढ़े-चढ़े रूप में उपलब्ध होती है।

प्रस्तुत अध्ययन में सन् 1960 से सन् 1980-81 तक के उपन्यासों को लिया गया है। इधर की समीक्षा में साठोत्तर साहित्य की सविशेष चर्चा हो रही है। "साठोत्तरी" शब्द उसीसे जुड़ा हुआ है। साठोत्तरी कविता, कहानी, नाटक प्रभृति के साथ साठोत्तरी उपन्यासों की चर्चा भी पर्याप्त परिमाण में हो रही है। अत: साठोत्तरी शब्द में एक काल--विषयक विभावना तो है ही, किन्तु साठ के बाद लिखे गये सभी उपन्यास इस संज्ञा की कोटि में नहीं आते। यथार्थ धर्मिता, प्रयोगशीलता, आधुनिक भावबोध, कलागत सूक्ष्मता, व्यंग्यात्मक तेवर, नवीन भावाभिव्यंजना आदि से युक्त रचनाओं को ही इसके अंतर्गत रखा गया है।

आधुनिक उपन्यास-साहित्य पर डॉ॰ इन्द्रनाथ मदान, डॉ॰लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, डॉ॰ गणेशन, डॉ॰ धनराज मानधाने, डॉ॰ चन्द्रकांत बांदिवडेकर, डॉ॰ रामदरश मिश्र, डॉ॰ त्रिभुवनसिंह, डॉ॰ कुंअरपाल सिंह, भीष्म साहनी, राजेन्द्र यादव प्रभृति विद्वानों ने सविस्तार चर्चा की है। डॉ॰ रमेश कुंतल मेघ एवं डॉ॰ शिवकुमार मिश्र के सैद्धान्तिक ग्रंथों में भी यथार्थवाद, आधुनिकता एवं आधुनिकीकरण जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों की पड़ताल हुई है। व्यंग्य को लेकर भी डॉ॰ वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता, डॉ॰ शेरजंग गर्ग, डॉ॰ बरसानेलाल चतुर्वेदी, डॉ॰ प्रेमनारायण टंडन, डॉ॰ बलदेवप्रसाद मिश्र, डॉ॰ पुत्तूलाल शुक्ल आदि

विद्वान तथा सर्वश्री हरिशंकर परसाई, डॉ॰ नरेन्द्र कोहली, डॉ॰ सुरेन्द्र तिवारी जैसे व्यंग्यकारों ने विशद चर्चा की है । साठोत्तरी कविता पर डॉ॰ बादामसिंह रावत एवं साठोत्तरी उपन्यासों पर डॉ॰ पारूकांत देसाई के अध्ययन उपलब्ध हैं, किन्तु प्रस्तुत अध्ययन में साठोत्तरी उपन्यासों के एक विशिष्ट पहलू को लेकर उसके कतिपय आयामों के विश्लेषित किया गया है । अत: यह शोध-प्रबन्ध अपनी पूर्व विवेचन-परम्परा में यत्किंचित योग देने का एक नम्र प्रयास मात्र है ।

प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य प्रतिपाद्य साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में व्यंग्य के स्वरूप को निरूपण करना है । अत: इसमें साठोत्तरी उपन्यासों को सामान्यत: और साठोत्तरी उपन्यासों में आये व्यंग्योन्मुखी उपन्यासों को विशेषत: चर्चा का विषय बनाया गया है । साठोत्तरी कविता व कहानी की भाँति साठोत्तरी उपन्यास भी अपनी अलग छवि स्थापित कर सका है । भौतिकवादी वस्तुवादिता तथा राजनीति की काली-अँधी छाया ने मानवीय सम्बन्धों के रेशे - रेशे बिखेर कर तमाम जीवन-मूल्यों को छेंक दिया है । इससे उत्पन्न विसंगतियों के कारण व्यंग्य दृष्टि रचना - प्रक्रिया पर हावी हो रही है । उपन्यास में व्यंग्य तो पहले भी मिलता था । प्रेमचन्द्र - पूर्व युग में बालकृष्ण भट्ट मेहता लज्जाराम शर्मा तथा मन्नन द्विवेदी आदि में खूब व्यंग्य मिलता है । प्रेमचन्द के सभी उपन्यासों मे उच्च कोटि का व्यंग्य उपलब्ध होता है । किन्तु इधर कुछेक ऐसे उपन्यासों की सृष्टि हुई है, जिसमें यह व्यंग्य - दृष्टि ही प्रधान रही है । "राग दरबारी" तो इसका प्रतिमान-सा बन रहा है ।

अध्ययन की सुविधा के लिए प्रस्तुत शोधप्रबन्ध को सात अध्यायों में विभाजित किया गया है । प्रथम अध्याय -- "विषय-प्रवेश" में विषय-प्रर्वतन की दृष्टि से कतिपय मुद्दों को लेकर सैद्धान्तिक पक्ष का विवेचन हुआ हैं । उपन्यास की यथार्थधर्मिता को लक्ष्य के युगीन-चेतना पर संक्षेप में विचार किया गया है । इसी अध्याय में साठोत्तरी उपन्यासों की सैद्धान्तिक विवेचना भी प्रस्तुत है । तत्पश्चात् व्यंग्य के स्वरूप का विवेचन करते हुए "व्यंग्य" शब्द की व्याख्या, व्यंग्य की परिभाषा, हिन्दी में व्यंग्य-विचार, व्यंग्यकारों की दृष्टि में व्यंग्य, हास्य और व्यंग्य का अंतर, उपहास, परिहास, विट, बर्लेस्क, व्यंग्य के सन्दर्भ में इन्वेक्टिव तथा लेम्पून जैसे कतिपय महत्वपूर्ण मुदों पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में व्यंग्यात्मकता की दृष्टि से उपन्यास की विभिन्न कोटियों पर विचार हुआ है । प्रथम कोटि में वे उपन्यास आते हैं जो आद्यन्त व्यंग्योन्मुखी है, जिन्हें हम व्यंग्यात्मक उपन्यास भी कह सकते हैं । "राग दरबारी" "कथा-सूर्य की नयी यात्रा", "एक चूहे की मौत", "कुरु कुरु स्वाहा", "नेताजी कहिन", "सबहि नचावत राम गोसाई", "दिल एक सादा कागज", "किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई", "मुरदाघर", "इमरतिया", "रानी नागफनी की कहानी", "महाभोज", "जंगल तंत्रम्", "सूखता हुआ तालाब" प्रभृति ऐसे ही उपन्यास हैं । दूसरे वे उपन्यास हैं जिनमें व्यंग्यात्मकता एक मुख्य "टौन" के रूप में मिलती है । "आधा गाँव", "अलग - अलग वैतरणी", "जुलूस", काँचघर", तमस", "डाक बंगला", "मुरदाघर" "कृष्णकली", "रेखा", "सीमाए टूटती है", "गोबर गणेश", "अपना मोर्चा",

"टोपी शुक्ला", "अठारह सूरज के पौधे", "एक पंखुड़ी की तेज़धार", "शहर में घूमता आईना", उग्रतारा", "शहीद और शोहदे", "टूटते-बिखरते लोग" प्रभृति उपन्यास इस कोटि में आते हैं । उपन्यासों की तीसरी कोटि वह है जिसमें व्यंग्य सामान्य रूप से छिटपुट मात्रा में आया है । दूसरे अध्याय में इन तीनों कोटियों के उपन्यासों में निरूपित व्यंग्य को उजागर किया गया है । अध्याय के प्रारंभ में "उपन्यास और व्यंग्य" का सम्बन्ध निरूपित करते हुए "हिन्दी-उपन्यास में व्यंग्य की परम्परा" (सन् 1960 तक) को निर्दिष्ट किया गया है ।

तीसरे अध्याय में उपर्युक्त त्रिस्तरीय व्यंग्योन्मुखता की पृष्ठभूमि में कतिपय व्यंग्योद्भावक स्थितियों की पड़ताल की गई है । विषमता, विसंवादिता विकृतियाँ, विद्रूपता आदि जो व्यंग्य के मूल कारण हैं उनका विश्लेषण उपन्यासों के सन्दर्भ में किया गया है । उपर्युक्त विसंगतियों को बढ़ानेवाले तत्व जैसे बढ़ती हुई राजनीति, नारी-शोषण के नये कोण, भ्रष्टाचार, अस्तुवादी भौतिक चिन्तन, जीवन-मूल्यों का विघटन आदि का समुचित विश्लेषण भी यहाँ प्रस्तुत है ।

चौथे अध्याय में व्यंग्यात्मक उपन्यासों की चरित्र-सृष्टि पर सविस्तार चर्चा की गई है । उपन्यासकार का लक्ष्य निश्चित होने के कारण इन उपन्यासों के चरित्र एक बँधी-बँधायी मुद्रा को लेकर आते हैं तथापि उनमें कुछ जातिगत एवं व्यक्तिगत विशेषताएं लक्षित होती हैं । पात्रों के वर्गीकरण एवं चरित्रांकन की विधि पर भी यहाँ विचार हुआ है, किन्तु इन सब में इस बात पर ध्यान केन्द्रित रहा है कि पात्रों की व्यंग्योन्मुखी प्रवृत्तियाँ विशेषतः उभरकर आयें ।

पाँचवे अध्याय में व्यंग्यात्मक परिवेश के नाना आयामों पर विचार-विमर्श हुआ है । व्यंग्यात्मक स्थितियों का निरूपण पहले भी उपन्यासों में होता रहा, किन्तु अब समूचा परिवेश इतना व्यंग्यात्मक होता जा रहा है कि पिछले कुछ दशकों में ऐसी औपन्यासिक रचनाएं सामने आयीं जिनका रूपबन्ध संपूर्ण व्यंग्यात्मकता लिए हुए है । आज का परिवेश तीखी प्रतिक्रिया से इतना आक्रान्त है कि सामान्य-सी लगनेवाली बात भी इस विशिष्ट संदर्भ में व्यंग्य का आलंबन बन सकती है । प्रस्तुत अध्याय में इस व्यंग्यात्मक परिवेश के निर्माण में भाषा का योग तथा व्यंग्यात्मक क्षणों की तलाश - तराश पर विचार करते हुए ग्रामीण एवं नगरीय परिवेश के उपन्यासों की व्यंग्यात्मक स्थितियों को विश्लेषित किया गया है ।

व्यंग्यात्मकता के सविशेष आग्रह से उपन्यास का रूपबन्ध भी बदला है । इस बदलते रूपबन्ध में लेखक की सभानता भी देखी जा सकती है । फन्टासी, शब्द-सह-चयन (Word association) पूर्व दीप्ति (Flash back), कथा-प्रस्तुति की बहुस्तरीयता, हास्य-व्यंग्य की सृष्टि हेतु अवांतर कथाओं का प्रयोग जैसी शिल्पगत विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं । व्यंग्यात्मक उपन्यासों की भाषिक - संरचना भी एक व्यंग्यात्मक छवि-मुद्रा या तेवर लिए रहती है । उसके प्रतीक, उपमान मुहावरे, उक्तियाँ आदि सभी "व्यंग्यात्मक टोन" में वृद्धि करते हैं । छठे अध्याय में इन सबका विवेचन हुआ है ।

अंतिम अध्याय उपसंहार का है जिसमें संपूर्ण प्रबन्ध पर एक दृष्टिपात करते हुए व्यंग्य के कतिपय पहलुओं पर विचार हुआ है । श्रेष्ठ व्यंग्य और

उसकी उपादेयता को रेखांकित करते हुए जिन क्षेत्रों पर अभी व्यंग्य-दृष्टि नहीं पड़ी है उन्हें संकेतित करने की चेष्टा हुई है । अध्याय के अंत में साठोत्तरी उपन्यास साहित्य एवं व्यंग्य को लेकर अध्ययन की अन्य दिशाओं व परिप्रेक्ष्यों का संकेत दिया गया है । प्रस्तुत प्रबन्ध विस्तृत अध्ययन की दिशाओं को खोलने में तथा ज्ञान राशि के संचयन में किंचित योग दे सका तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूंगा ।

उपन्यासों की प्रकाशन तिथियों को निश्चित कर इनकी तालिका बनाने में अनेक असुविधाओं का सामना करना पड़ा क्योंकि अधिकांश उपन्यासों में उनके प्रथम संस्करणों की तिथियों अनुपलब्ध है । इस दिशा में विभिन्न ग्रंथों, पत्रिकाओं, प्रकाशन सूचियों का आधार किया गया है । अत: उनके लेखकों - प्रकाशकों के प्रति मैं अतीव कृतज्ञ हूँ । प्रबन्ध के इस कलेवर में जिन सर्जकों, समीक्षकों एवं विद्वानों की कृतियों व समीक्षाओं का आधार ग्रहण किया गया उन सब के प्रति मैं हृदय से आभारी हूँ ।

इस शोध-प्रबन्ध को यह रूप प्रदान करने में मेरे निर्देशक डॉ॰ पारूकान्त देसाई से मुझे समय-समय पर अनेक निर्देश मिलते रहे हैं । शोध-प्रणाली से मुझे परिचित कराकर न केवल उन्होंने मूल्यवान निर्देश दिए हैं, वरन इस कार्य-हेतु वे सदैव मेरा उत्साह संवर्द्धित करते रहे । उनके व्यक्तित्व, संस्कार, निखालसता, सद्भावपूर्ण व्यवहार आदि से मुझे निरंतर एक बल मिलता रहा और मैं इस दुष्कर कार्य को संपन्न कर सका । लाख कृतज्ञता ज्ञापित करने पर भी उनके ऋण से मैं उऋण नहीं हो सकता ।

प्रस्तुत प्रबन्ध की अनेक समस्याओं की समीचीन समझदारी को विकसित करने में हिन्दी के विभागाध्यक्ष एवं मेरे गुरुवर श्रद्धेय डॉ. दयाशंकर शुक्लजी तथा भूतपूर्व विभागाध्यक्ष गुरुप्रवर प्रोफेसर डॉ. मदनगोपाल गुप्तजी से मुझे अनेक बहुमूल्य निर्देश प्राप्त होते रहे हैं । उनकी शिष्य-वत्सलता से मेरा जीवन-पथ सदैव आलोकित रहेगा । हिन्दी विभाग के रीडर श्रद्धेय डॉ. के.एम. शाह से भी मुझे समय-समय पर उचित मार्गदर्शन मिलता रहा है । और सदैव मानसिक बल देते रहे हैं । अन्य विभागी प्राध्यापकों में डॉ. बी.डी. शर्मा, डॉ. आर.डी. पाठक, डॉ. पी.एन. झा, डॉ. ए.के. गोस्वामी, डॉ. भगवानदास कहार प्रभृति से मुझे सदैव प्रेरणा मिलती रही हैं । यहाँ मेरे गुरुवर डॉ. राजेन्द्र मिश्र के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित किये बिना रहा नहीं जाता, जो मेरे सदैव प्रेरणा-स्त्रोत रहे हैं । यहाँ पर एक विशेष उल्लेख उन दो विद्वानों का भी करना चाहूंगा जिन्होंने मुझे एक शिष्य के रूप में अपनाकर अपने बहुमूल्य सुझाव दिये वे हैं आचार्य डॉ. भगीरथ मिश्र तथा डॉ. बी.एस. अग्रवाल "एल.डी. आर्ट्स कालेज) (हिन्दी विभागाध्यक्ष) इनका आभार व्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं है ।

मेरे कालेज के प्राचार्य श्री के.डी. पटेल "सुणावकर" के सहज वात्सल्य व स्नेह का विस्मरण मेरी अकृतज्ञता ज्ञापित करेगा । उनका साहित्यिक संस्पर्श मुझे सदैव उत्साहित करता रहा । उनके प्रति मैं हृदय से आभारी हूँ । तथा मेरे साथी प्राध्यापक डॉ. प्रफुल्ल जोशी, श्री. जी.आई. मारू, श्री बी.के. पंचाल, संजय अमराणी, जी.बी. उपाध्याय, के.एच. परमार का

मुझे सहयोग न मिला होता तो मुझे काफी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता । अत: उनके प्रति मैं हृदयसे आभारी हूँ ।

मेरी धर्मपत्नी नेहा इस समूची प्रक्रिया में मुझे सदैव सहयोग देती रही है, जिसके अभाव में मैं यह कार्य संपन्न न कर पाता । उसकी प्रेरणा अंत:सलिला बनकर मेरी प्रतिभा-शक्ति में प्रवाहित होती रही ।

पुन: एकबार उन सभी महानुभावों मित्रों, सहृदयों का मैं आभार प्रकट करता हूँ, जिनके प्रत्यक्ष वा परोक्ष सहयोग ने मेरे कर्म पथ को सुकर बनाया है ।

अन्त में —

कँटीले इस जग-वृक्ष पर सुन्दर दो ही डार ।
अनुशीलन साहित्य का गुणी जनों का प्यार ।।

अस्तु, यह शोध-प्रबन्ध मेरे साहित्यिक अनुशीलन को बढ़ाने में और विद्वज्जनों का स्नेह भाजन बनने में सहायक हो इस कामना के साथ विरमता हूँ ।

अनुसंधित्सु

दिनांक : 22-4-1987

:किशोरसिंह बारोट: